अगस्त १९९६ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

उद्‌बोधन

अपनत्व की गहन आसक्ति

ऐ मेरे मन!

बता तो सही, वह कौन है जिसके बर्ताव से तू इस कदर तिलमिला उठा और अब तक तिलमिलाए ही जा रहा है? वह तेरा पुत्र है? पिता है? अनुज है? अग्रज है? पत्नी है? पति है? सास है? बहू है? गुरु है? शिष्य है? मित्र है? स्नेही है? अवश्य! अवश्य! इन्हीं में से कोई एक होगा तभी तेरा दौर्मनस्य अब तक दूर नहीं हो पाया। तभी तो प्रेशर-कुकर की तरह अभी तक भीतर ही भीतर कुलबुलाए ही जा रहा है।

सचमुच! जो जितना निकटस्थ है, उसका दुर्व्यवहार उतना ही अधिक कटु लगता है। कोई घनिष्ठ स्वजन न होकर केवल मात्र सामान्य परिचित ही हो तो उसका दुर्व्यवहार जल्दी भुला दिया जाता है और यदि कोई नितांत अपरिचित ही हो तो उसके दुर्व्यवहार को बहुधा महत्त्व तक नहीं दिया जाता। परंतु वैसा ही दुर्व्यवहार यदि घनिष्ठ स्वजन करे तो वह देर तक हृदय को सालता रहता है। वर्षों तक और कभी-कभी तो जीवन भर जी जलाता रहता है।

कभी सोचा तूने कि ऐसा क्यों होता है? कभी समझा तूने कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा प्रकट किया हुआ एक जैसा ही दुर्व्यवहार तुझे कम-अधिक पीड़ाजनक क्यों लगता है? जरा ध्यान देकर देख तो सच्चाई स्पष्ट नजर आने लगेगी। जिसे तूने अपना मान रखा है उसके आंख बदलने पर ही तू इतना व्याकुल हो उठता है। जिसे तूने कभी अपना नहीं माना था, उसके आंख बदल लेने पर दुःख हो तो भी उतनी गहराइयों तक नहीं जाता और उतनी देर तक नहीं टिकता। अतः गहरा दुःख महज गहरे दुर्व्यवहार के कारण नहीं है। गहरा दुःख दुर्व्यवहार करनेवाले व्यक्ति के प्रति तेरे स्वजनभाव के कारण है। जिसको तूने अपना मान लिया उससे यह भी अपेक्षा करने लगा कि उसका सारा व्यवहार तेरी इच्छानुकूल होना चाहिए। तेरी इच्छानुकूल नहीं हो रहा है तो वह तेरा अपना कैसे हुआ? अतः जहां किसी अपने का अपनापन टूटने लगा, वहीं तेरा दुःख बढ़ने लगा। क्योंकि जिसे अपना माना उसके प्रति अनेक स्वप्न भी तो सँजोए। और उस अपनेपन के टूटने के साथ-साथ वे स्वप्न भी तो टूटे। मसलन –

यह मेरा पुत्र है। मैंने इसे पाल पोस कर इतना बड़ा किया है, पढ़ाया है, लिखाया है, काम-धंधा सिखाया है और अब इसे कमाने योग्य बना दिया है। और यह सब इसलिए कि जब मैं बूढ़ा हो जाऊंगा, अपंग हो जाऊंगा दुर्बल हो जाऊंगा, कमाने लायक नहीं रहूंगा तो यह मेरी देख-भाल करेगा, सेवा करेगा, आज्ञा-पालन करेगा, मेरी इच्छाओं की पूर्ति करेगा। और अब एकाएक इस मोहक स्वप्न पर करारी ठोकर लगी। अपने पांव पर खड़ा होते ही यही पुत्र मेरी उपेक्षा करने लगा, अवहेलना करने लगा। इसे अब मेरी कोई आवश्यकता नहीं रह गई, इसलिए मेरा निरादर तक करने लगा। मेरे स्वप्नों का सुंदर महल भरभरा कर ढह पड़ा अथवा –

यह मेरा पिता है। यह मुझे कितना प्यार करता है। मुझसे कोई भूल भी हो जाय तो सदा माफ कर देता है। औरों के सामने मेरी भूल को छिपाता है और मेरे गुणों को बढ़ा-चढ़ा कर बताता है। किसी से झगड़ा हो जाय तो सदा मेरा ही पक्ष लेता है। मुझ पर कितना स्नेह बरसाता है। यह सदा ही मुझे ऐसा प्यार देता रहेगा। सदा मेरा ही पक्ष लेता रहेगा। पिता के संबंध में ऐसे स्वप्न मैंने सँजो रखे हैं। परंतु एक दिन देखता हूं कि वह अपने छोटे बेटे को अधिक प्यार करने लगा है। उसे ही अधिक महत्त्व देता है। उसका ही अधिक पक्ष लेता है। मेरी कितनी अवहेलना करता है और उस पर कितना स्नेह बरसाता है। मेरी कितनी उपेक्षा करता है और उसका कितना ख्याल रखता है। मेरे पिता की जो स्नेह-मूर्ति मैंने अपने मन में गढ़ी थी वह इस प्रकार टूटने लगती है। अब वही प्यारा पिता मुझे कितना बुरा लगने लगता है। अथवा –

यह मेरा भाई है, सहोदर है। किस प्रकार मुझ पर अपना प्राण निछावर करता है। छोटा है तो मुझे कितना आदर सम्मान देता है। बड़ा है तो मुझ पर कितना प्यार उड़ेलता है। हम दोनों का परस्पर प्यार का संबंध लोगों के लिए चर्चा का विषय बन गया है। परंतु समय बदलता है और मैं देखता हूं कि मेरे भाई का जो सुंदर चित्र मैंने अपने अंतःपटल पर खींच रखा था, उसका रंग बदलने लगा है। वह मुझे अत्यंत असुंदर लगने लगा है। क्योंकि अब उसके अपने स्वार्थ उभर आये हैं जो कि मेरे स्वार्थों से टकराने लगे हैं। वह सदा अपने स्वार्थ की ही बात करता है। मेरे स्वार्थ की बात को सदा ही काटता है। ऐसा भाई अब मुझे भीतर ही भीतर काटने लगा। कचोटने लगा। अथवा –

यह मेरी पत्नी है। कितनी प्यारभरी! कितनी पतिव्रता! कितनी आज्ञाकारिणी! कितनी सेवामयी! इसके साथ प्यारभरा जीवन बिताने के कितने सुंदर स्वप्न सँजोए थे मैंने! और अब इसे क्या हो गया? यह मेरे स्वप्नों की रानी! इसका रंग-ढंग बदला-बदला नजर आने लगा। इसकी वफादारी पर संदेह होने लगा मुझे। और इसके प्रति मन में जो इतना बड़ा आकर्षण था, वह कपूर की तरह कहां उड़ गया? अथवा –

यह मेरा पति है। प्यार का पुतला! स्नेह का समुंदर! मेरे सिवा किसी की ओर आंख उठा कर देखता भी नहीं। मेरे स्वप्नों का देवता! अरे, एकाएक इसको क्या हो गया? किस डाइन ने इस पर जादू कर दिया? अब यह मुझसे कितना खिंचा-खिंचा रहने लगा। इसकी सारी हरकतें मुझे कितनी अप्रिय लगने लगीं। अथवा –

यह मेरी बहू है। घर में आई थी तो इसे लेकर कितने सुंदर स्वप्नों का संसार रचाया था मैंने! यह मेरी खूब सेवा करेगी। सदा मेरे मनोनुकूल रहेगी। मेरा आदर सम्मान करेगी। परंतु सारे स्वप्न कितनी जल्दी बिखर गये। स्वयं तो मनमानी करने ही लगी, मेरे प्रिय आज्ञाकारी पुत्र को भी किस प्रकार मेरे विरुद्ध कर दिया इस कलमुही ने! अथवा –

यह मेरा गुरु है। मुझ पर कितनी कृपा है इसकी। मैं ही इसका पट्ट शिष्य साबित होने वाला हूं। मैं ही इसकी गद्दी का उत्तराधिकारी

बनने वाला हूं। परंतु अरे, एकाएक क्या हो गया इसे? अब यह मुझको इतना महत्त्व क्यों नहीं देता? मुझसे कनिष्ठ शिष्यों को क्यों इतना महत्त्व देने लगा? अथवा –

यह मेरा शिष्य है। बड़ा विनीत! बड़ा श्रद्धालु! यह सदा ऐसा ही बना रहेगा। परंतु नहीं, ऐसा नहीं हुआ। कितना बदल गया, यह यकायक !अब यह अपनी इच्छाओं को ही महत्ता देने लगा। मेरी इच्छाओं के विरुद्ध मनमानी करने लगा। टूटा स्वप्न। टूटी आशाएं आदि-आदि।

इस प्रकार जब कभी तेरा कोई भी प्यारा घनिष्ट तेरी इच्छाओं के प्रतिकूल काम करने लगे, तेरे स्वप्नों के विपरीत काम करने लगे तो उसके प्रति उत्पन्न हुआ तेरा सारा स्नेह-संबंध छिन्न-भिन्न होने लगता है। इससे यह स्पष्ट है कि तुझे वस्तुतः न माता-पिता प्रिय है, न पुत्रकलत्र, न भाई-बंधु, न सगे-संबंधी। सबसे बड़ा प्यार तुझे अपने आप से है – **नत्थि अत्तसमं पेमं**। सबसे बड़ा प्यार तुझे अपने सपनों से है। अपनी महत्त्वाकांक्षाओं से है। जो-जो व्यक्ति इन सपनों को पूरा करने में तेरे साथ हैं, वे-वे प्रिय हैं। जो-जो अवरोधक ,हैं वे-वे अप्रिय हैं। जब-जब साथ हैं तब तब प्रिय हैं, जब-जब अवरोधक हैं तब-तब अप्रिय हैं। जितने-जितने साथ हैं, उतने-उतने प्रिय हैं। जितने-जितने अवरोधक है, उतने-उतने अप्रिय हैं। कोई तेरे सपनों के अनुकूल व्यवहार करता है तो वह पिता न होने पर भी तुझे पिता जैसा पूज्य लगने लगता है। पुत्र न होने पर भी पुत्र जैसा प्रिय लगने लगता है। भाई न होने पर भी भाई जैसा प्यारा लगने लगता है। उसकी हर हरकत तुझे बड़ी सुहावनी लगती है। उसका हर बोल तेरे कानों में मिश्री घोलता है। परंतु यदि कोई तेरे स्वप्नों के विपरीत कुछ करने लगे तो वह पिता हो तो भी दुश्मन जैसा लगने लगता है। पुत्र हो तो भी बैरी जैसा लगने लगता है। भाई हो तो भी जहर जैसा लगने लगता है। उसकी हर हरकत तेरी आंखों में कांटे-सी खटकती है। उसका हर बोल तेरे हृदय में विष-बुझे तीर-सा चुभता है। जिन-जिन व्यक्तियों के स्वप्न तेरे स्वप्नों से ताल मेल खाते हैं, जिन-जिन व्यक्तियों की आशा-आकांक्षाएं तेरी आशा-आकांक्षाओं के समानांतर अनुकूल दिशागामिनी हैं वे-वे व्यक्ति तुझे बड़े प्रिय लगते हैं, जिन-जिन के स्वप्न तेरे स्वप्नों से टकराने लगे, जिन-जिन की आशा-आकांक्षाएं तेरी आशा-आकांक्षाओं से विपरीत दिशा की ओर जाने लगीं, वे-वे तुझे कडुवे लगने लगे। किसी अनजान अपरिचित व्यक्ति के साथ तू अपने स्वप्नों का तालमेल नहीं बैठाता। जो निकटस्थ हैं, घनिष्ट हैं उनसे ही अपने भावी स्वप्नों के संबंध जोड़ता है। और उन्हीं को लेकर जब स्वप्न टूटते हैं तो वे ही खूब खारे लगने लगते हैं। उनका ही व्यवहार अत्यंत अप्रिय लगने लगता है। उनके ही बोल तुझे काटने लगते हैं।

तू चाहता है कि सब तुझसे मुस्कराकर बात करें; क्योंकि कोई मुस्कराकर बात करता है तो तुझे अच्छा लगता है। तू चाहता है कि कोई तेरा तिरस्कार न करे; क्योंकि तिरस्कार करता है तो तुझे बुरा लगता है। परंतु तू यह क्यों नहीं समझता कि कलतक जो व्यक्ति तुझे प्यार करता था और तेरा तिरस्कार नहीं करता था, वह आज यकायक क्यों पलट गया? स्पष्ट है कि उसे पता चल गया कि अब तू भीतर ही भीतर उसके सपनों की जड़ खोदने लगा है। तू अपने सपने पूरे करने के लिए उसके सपनों पर कुठाराघात करने लगा है। और हर व्यक्ति के अपने-अपने सपने होते हैं। हर व्यक्ति को अपने सपनों से आसक्ति होती है। ऐसी अवस्था में अपने सपनों से आसक्त हुआ वह व्यक्ति तुझसे मुँह नहीं मोड़ लेगा तो और क्या करेगा? तू अपनी ओर देख। तू भी जब किसी को अपने सपनों के विरुद्ध जाते देखता है तो उसके प्रति किस प्रकार घृणा से भर उठता है और उससे अपने सारे प्रिय संबंध तोड़ बैठता है। उसके प्रति कडुवे बोल बोलने लगता है, उसका तिरस्कार करने लगता है। यदि ऐसे ही कोई अन्य भी तेरे प्रति करने लगे तो इसमें अनोखापन क्या है?

समझ, भोले मन! जो तेरी अवस्था है, वही सब की अवस्था है। जैसे तुझे अपने सपने प्रिय हैं, वैसे ही औरों को भी अपने-अपने सपने प्रिय हैं। जैसे तुझे अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता, वही दशा औरों की भी है। सब के सब एक जैसी आग की लपटों में जले जा रहे हैं।

समझ, इस स्वभाव के सही रहस्य को समझ! पहले तो तूने भविष्य के प्रति सुनहरी आशाओं के कपोलकल्पित सपने रच लिये। फिर इन सपनों के प्रति गहरी आसक्ति पैदा कर ली और इन सपनों की पूर्ति में ही अपने भविष्य की सुरक्षा मान बैठा। ये सपने पूरे नहीं होंगे तो मेरा क्या होगा? इस भय और आशंका के मारे भावी कल के प्रति चिंतित-व्यथित रहने लगा। अपने आपको सदा असुरक्षित महसूस करने लगा। ऐसी अरक्षित अवस्था में अपने किसी निकटस्थ व्यक्ति को अपनी सुरक्षा के केंद्र के रूप में देखने लगा। उसके साथ तेरे सारे संबंध इस सुरक्षा को लेकर ही बने। जो जितना नजदीक है वह तेरे लिए अपनी सुरक्षा का उतना ही मजबूत गढ़ बन गया और जब-जब यह गढ़ टूटता नजर आया, तब-तब तू बेहद व्याकुल हो उठा। जिन अपरिचित लोगों के प्रति तेरे मन में भविष्य की सुरक्षा संबंधी कभी कोई आशा जगी ही नहीं, उनके अनचाहे व्यवहार ने तुझे इतना दुःखी कभी नहीं बनाया। परंतु जिन-जिन के प्रति तूने अपने भविष्य की सुरक्षा की आशा बांधी, उन-उन को बदलते देख कर तू इतना व्याकुल हो उठा। इसीलिए कहता हूं कि जिसके कटु वचनों ने तुझे अब तक इतना व्याकुल कर रखा है, वह अवश्य ही तेरा कोई निकटस्थ है। उसके प्रति तेरे मन में बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। उसमें तू अपने सुनहरे सपनों की पूर्ति का साधन देखता था। और उसके इस अनवांछित और अप्रत्याशित व्यवहार ने तेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। यही मुख्य कारण है तेरी गहरी बेचैनी का।

इसलिए, ऐ मेरे अबोध मन! अपनी बेचैनियों से मुक्ति पाने के लिए इन बेचैनियों के ऊपरी-ऊपरी कारणों से उलझना छोड़। मूल कारण को समझ कर उसे ही दूर करना सीख। यह जो तूने अपने आप के प्रति गहरी आसक्ति पैदा कर ली है, अपने सपनों के प्रति गहरी आसक्ति पैदा कर ली है, इन सपनों को लेकर, इन स्वजनों के प्रति गहरी आसक्ति पैदा कर ली है, इसे दूर कर। किसी भ्रामक "मैं" के प्रति पैदा हुई यह आसक्ति, किसी कल्पित सपने के प्रति पैदा हुई यह आसक्ति, किसी भंगुर व्यक्ति के प्रति पैदा हुई यह आसक्ति, किसी परिवर्तनशील परिस्थिति के प्रति पैदा हुई यह आसक्ति, बेचैनी ही पैदा करने वाली है। अतः किसी की ओर आशाभरी आंखों से देख-देख कर उसके सहारे सुनहरे सपने सँजोने की दुःख-जननी आदत छोड़। ऐसे सपने सदा पूरे नहीं हुआ करते। कभी कोई पूरा हो भी जाय तो अनेक नए-नए सपने पैदा होने लगते हैं। तांता लग जाता है इन आशाभरे सपनों का। और जब कोई-सा भी एक सपना पूरा

नहीं होता अथवा पूरा होकर नष्ट हो जाता है तो बड़ा दुःख होता है। और वह हर व्यक्ति जो इसका प्रत्यक्ष कारण बनता है, वही दुश्मन जैसा लगने लगता है। इस सच्चाई को समझते हुए किसी स्वजन पर क्रुद्ध होने के बजाय अपनी ही इन कमनीय कल्पित आशाओं की आसक्तियों से बाहर निकल, और विपश्यना साधना द्वारा इस दुःख की जड़ खोद कर सच्चा सुख हासिल कर। शांति इसी में है। मुक्ति इसी में है। मंगल इसी में है।

मंगल मित्र,
स. ना. गो.

(नए साधकों के लाभार्थ 'विपश्यना' के वर्ष १०, अंक ५ का पुनर्मुद्रण)

साधकों के उद्गार

● जोधपुर से श्री एम.आर. फोफलियाजो कि पिछले १५ वर्षों से विपश्यना करते रहे हैं, लिखते हैं, "पत्नी (जिसने एक शिविर किया था) के विषादपूर्ण वियोग के समय में विपश्यना ही एक मात्र सहारा बनी। साहस बटोर कर अनित्यबोध पुष्ट करते हुए मैंने मैत्री भावना का अभ्यास बढ़ाया और आप की लिखी पुस्तकों और प्रवचनों की कैसेट के माध्यम से धर्म को जीवंत रखने में सफल हुआ। धन्य हैं गुरुदेव और धन्य है विपश्यना, जिसके अभ्यास से संसार को वास्तविक जीवन जीने की कला का ज्ञान-प्रकाश मिल रहा है।"

● नाशिक रोड के श्री चांदशेख लिखते हैं, ... "इगतपुरी में पहला शिविर दि. २६ ५ ८२ से ८ ६ ८२ को किया। इससे काफी लाभ हुआ। उसके बाद १० दिवसीय चार शिविर किये, एक बीस दिवसीय शिविर किया। अब तक कुल मिला कर आठ शिविर किये। इन तेरह-चौदह वर्षों से विपश्यना के अलावा कोई भी साधना नहीं की। (इसके पहले एक-दो जगहों पर जाकर कुछ और साधनाएं की थी, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ।) रोजाना नियमित दो घंटे और कभी चार तो कभी छह घंटे भी साधना कर लेता हूं। बहुत से मित्रों को प्रेरणा देकर शिविर में जाने को कहा और उन्हें भी बहुत लाभ हुआ। बचपन से ही मेरे मन में कोई भी 'धर्म का पगड़ा' नहीं था, इसलिए विपश्यना जानना मेरे लिए आसान रहा।

विपश्यना साधना से मेरी शारीरिक और मानसिक बीमारियां कम हुइर्। आठ वर्षों से मेरे पेट में लगातार दर्द होता रहता था। सभी उपायों के बाद भी दर्द कम नहीं हुआ। साधना से पेट की बीमारी तो गयी ही, साथ-साथ अन्य छोटी-मोटी शिकायतें भी दूर हुइर्। क्रोध बहुत आता था, अब कम हो गया है। द्वेषभाव कम होकर मैत्रीभाव आ रहा है। बहुत प्रकार के नशे किया करता था, अब वे सभी आदतें छूट गयी हैं। सचमुच यह जीवन बहुत धन्य हो गया है। लोभ, मोह, डर, फिकर, दुःख, संशय, नैराश्य – ये सब विकार कम हो गये हैं, जैसे नया जन्म ही हुआ है। सभी विकारों को सचेत होकर देखने की कला सीख ली है। ...

ऐसी महान विद्या सब को मिले, सब का जीवन धन्य हो! सभी अपने विकारों से, 'मेरे-तेरे' से, झूठे धर्मों के भ्रमों से, बेफजूल कर्मकांडों से दूर हों! सब को साधना मिले, सभी साधना करके अपना मंगल साधें! सब का मंगल हो!"

● अजमेर के श्री नृसिंहदेव अरोड़ा लिखते हैं, "... निरंतर विपश्यना के अभ्यास से धीरे-धीरे देवत्व का उदय होकर धरती पर स्वर्ग का-सा अनुभव हो रहा है। शिविरों में साधक को इसकी अनुभूति होती ही है। साधारण मनुष्य बाहरी जगत से तो परिचित होता है परंतु अंतर में क्या हो रहा है, उससे अपरिचित ही रहता है। वैज्ञानिक भी अंतरिक्ष की उड़ान तो भरता है परंतु अपनी ही काया में क्या हो रहा है, इससे अनजान ही रह जाता है। कहते हैं संसार में जो दूसरे को जानता है उसे शिक्षित कहते हैं, परंतु जो अपने आप को जानता है वही बुद्धिमान और प्रज्ञावान है। निरंतर विपश्यना साधना के अभ्यास से प्रज्ञा जागृत होती है, मन निर्मल होता है, स्वभाव व व्यवहार में शालीनता आती है, समता व सहनशीलता में वृद्धि होती है, काया निर्विकार होकर चित्त में शांति विराजती है। याने संपूर्ण मानव जीवन में निखार आता है। विपश्यना से जवानी में थमा शील और सुनहरी वृद्धावस्था (अस्सी के दशक) में भी थमी जवानी एक विपश्यी की जीवन-झांकी है। ऐसे जीवन का हर पल त्यौहार और मृत्यु एक महोत्सव है। इसी प्रकार सभी साधकों का मंगल हो!"

प्रश्नोत्तर –

प्रश्नः क्या आशा अभिलाषा विकार है?

उत्तरः सचमुच विकार है अगर उसके प्रति आसक्ति हो। प्रकृतिका नियम है –मुझे प्यास लगी है तो पानी चाहिए। तो मेरे मन में पानी की मांग होनी दोष की बात नहीं। लेकिन उसी पानी के लिए व्याकुल होऊं –हाय रे, मरा रे; पानी नहीं मिला रे, क्या हो जायगा रे, क्या हो जायगा रे? तो मैंने अपनी समता खो दी। बहुत व्याकुल हो गया –पानी चाहिए। मैंने प्रयत्न किया, प्राप्त नहीं हुआ –फिर मुस्कराया। फिर प्रयत्न किया, नहीं प्राप्त हुआ –फिर मुस्कराया। कोई दोष की बात नहीं। आसक्त होना दोष की बात है।

प्रश्नः आदमी के अंदर क्रोध क्यों पैदा होता है? क्या विपश्यना से वह कार्य बंद हो जाता है?

उत्तरः यही देखोगे कि क्रोध क्यों पैदा होता है और यह देखना आ जायगा तो उससे छुटकारा पाना भी आ जायगा।

प्रश्नः कृपया क्रोध को काबू में लाने का सुलभ उपाय बताइए।

उत्तरः विपश्यना में यही सीखोगे। चले आओ दस दिन –खूब अच्छा उपाय मिल जायगा।

प्रश्नः पुरानी बातों को लेकर पुराने व्यक्तियों के कारनामे याद आते ही बहुत क्रोध आता है। क्यों?

उत्तरः पुराने संस्कार हैं उन व्यक्तियों को लेकर। वे व्यक्ति तो मर गये लेकिन तुम्हारा क्रोध नहीं मरा। क्रोध को जगाये हुए हो। क्रोध को मारो। जब-जब क्रोध आता है तब-तब सांस को देखना शुरू कर दो। क्रोध मरने लगेगा। उसके मरने से कल्याण हो जायगा। मुख्य बात है अपने क्रोध को मारो। उसे मारने का एक ही तरीका है कि संवेदना को देखना शुरू कर दो। जो क्रोध आये –संवेदना के साथ ही आये। संवेदना को देखते जाओ, देखते जाओ। अनित्य है, अनित्य है, अनित्य है। क्रोध दूर होता चला जायगा। उससे छुटकारा हो जायगा।

प्रश्नः घबराहट बहुत होती है। थोड़ी भी आवाज हुई तो एकदम चौंक जाता हूं। कल्पनाएं बहुत आती हैं। बिल्कुल चैन नहीं पड़ती।

उत्तरः ऐसी अवस्था में आनापान ज्यादा करो। शरीर को ढीला करके लेटा दो, बहुत ढीला करो। सांस पर, धीमे सांस पर, हथेली पर, पगथली पर ध्यान करो। जो घबराहट उठी है उसको निकलने का रास्ता मिल जायगा। शांत हो जायगा मन। उसके बाद विपश्यना ठीक होने लगेगी।